20deepu:Layout 1 7/28/2017 5:15 PM Page 363

शहर और पर्यावरण

अवधेंद्र शरण

शहर और पर्यावरण के संबंध में मैं अपनी बात एक इतिहासकार के रूप में रखूँगा। जो मोटी बात मैं कहना चाहता हूँ, वह यह है कि पिछले लगभग दो-तीन दशकों से पर्यावरण के बारे में गहरी चिंता जताई जा रही है। सिर्फ़ भारत में ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व में। और इसमें अब शहरी पर्यावरण के सवाल भी जुड़ गये हैं।

इस इतिहास को देखने का एक नज़रिया, जो काफ़ी व्यापक नज़रिया है, एक स्टेज थियरी की तरह है। कुछ-कुछ 'कौन बनेगा करोड़पति शो' जैसा। हर आधुनिक शहर के इतिहास में कई पड़ाव आते हैं— हर एक पड़ाव पर समस्या भी अलग-अलग होती है और उनका समाधान भी अलग-अलग होता है। इसमें पहला पड़ाव है ग़रीबी से जुड़ी समस्याओं का, जैसे कि साफ़ पानी का न होना, शौच का प्रबंध न होना इत्यादि। दूसरा पड़ाव तब आता है जब उद्योग बढ़ता है, और हवा व पानी को दूषित करता है। फिर इससे निपटना होता है, जैसा कि पश्चिम के कई शहरों में हो चुका है। तीसरा पड़ाव तब आता है जब उपभोक्तावाद बढ़ता है और इसी के साथ गाड़ियों की संख्या बढ़ती चली जाती है और साथ ही साथ ऊर्जा की ज़रूरत भी। जैसा कि आजकल चीन और भारत में हो रहा है, और विश्व के कई विकसित शहरों में हो चुका है।

भारत में भी कुछ इसी तरह की सोच पिछले तीस सालों में विकसित हुई है। 1974 में *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली* में छपी एक टिप्पणी में उसके लेखक पूछते हैं : 'क्या राष्ट्रीय पर्यावरण योजना कमेटी इस तरह के कार्यक्रम लाना चाहती है जिससे पानी और शौच के मामले में सुधार हो, या वह औद्योगिक कचरे की सफ़ाई, गतिमय शहरी परिवहन, और राजमार्गों पर पैसा ख़र्च करना चाहती है?' इसी पत्रिका में एक और टिप्पणीकार आधुनिक, वैज्ञानिक समाजवादियों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं : कई लोग आजकल 'हमारी' हवा और पानी के बारे में चिंतित हैं, जबकि देश में कई लोग ऐसे हैं जिनको पानी नसीब ही नहीं होता, चाहे गंदा हो या साफ़।'

यह बात सतही तौर पर सही भी है पर मेरे विचार में पूरी तरह संतोषजनक नहीं है। और वह

20deepu:Layout 1 7/28/2017 5:15 PM Page 364

इसलिए कि मेरे विचार में भारत व चीन जैसे देशों की विशेषता यह है कि यहाँ किसी भी पड़ाव पर उभरी समस्या का पूर्णत: समाधान नहीं होता, बल्कि तीनों क़िस्म के हालात साथ-साथ मौजूद रहते हैं। यही कारण है कि जब हम भारत में शहर और पर्यावरण के बारे में सोचते हैं तो कोई ऐसी जादुई छड़ी नहीं मिलती जो एक ही साथ हर मुद्दे का समाधान कर सके।

यह तो हो गयी आज के शहर की बात। अब सवाल यह कि इस स्थिति का हम ऐतिहासिक आकलन कैसे करें। सवाल तो कई हो सकते हैं, पर मैं यहाँ सिर्फ़ दो पेश करता हूँ। पहला, अंग्रेज़ी हुकूमत के दौरान शहरी विकास और पर्यावरण का सवाल किन रूपों में उभर कर आया और इन पर क्या कार्रवाई की गयी?

दूसरा, जो इसी सवाल का अन्य रूप है कि पर्यावरण के मुद्दों पर जिस तरह के हस्तक्षेप हुए उसने अंग्रेज़ी शासन के स्वरूप को किस तरह से बदला?

एक तीसरा सवाल भी है कि 1947 और आज की तारीख़ के दरमियान किस तरह के बदलाव आये हैं या सोचने के कौन से नज़रिये और कौन-सी ऐसी पद्धतियाँ हैं जो तब से आज तक चली आ रही हैं जिनमें एक निरंतरता है?

मैं इन सवालों पर दो मुद्दों के संदर्भ में संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालूँगा, पहला पानी का मुद्दा और दूसरा ऊर्जा का। ज़्यादातर यह दिल्ली के संबंध में होगा पर अन्य शहरों का भी ज़िक्र आएगा।

पानी

अंग्रेज़ी हुकूमत दिल्ली में 1803 के बाद से लगातार मज़बूत होती चली गयी। पानी के मामले में उन्होंने पाया कि जो पानी यहाँ उपलब्ध था वह न तो सही मात्रा में मिलता था न ही पीने योग्य था—ख़ास कर वह पानी जो कुओं से निकाला जाता था। यह पानी खारा पानी नहीं था, बल्कि ख़राब पानी था और अफ़सरों का मानना था कि पानी के ख़राब होने का कारण था यहाँ के लोगों को सफ़ाई की आदत का न होना जिसके कारण वे नदियों, तालाबों और कुओं को लगातार दूषित करते रहते थे। अंग्रेज़ अफ़सर अकेले नहीं थे। गाँधी जी ने इसके बारे में कई बार लिखा। प्रताप नारायण मिश्र व अन्य लेखकों ने भी लिखा। और, स्कॉटलैण्ड से आये पैट्रिक गेडिस ने भी इंदौर दरबार को पेश की गयी रिपोर्ट में यही बात लिखी। लेकिन फ़र्क़ यह था कि जहाँ गाँधी वग़ैरह के लिए यह गंदगी धार्मिक और लौकिक दोनों ख़तरों का संकेत देती थी, वहीं अंग्रेज़ों के लिए यह सिर्फ़ साधारण और निरी स्वच्छता का मामला था। और, इस गंदगी से निजात पाने के लिए तीन तरीक़े थे :

1. विज्ञान का उपयोग : रासायनिक विश्लेषण और जीवाणु विश्लेषण। दोनों ही का औपनिवेशिक दौर में थोड़ा बहुत उपयोग किया गया।

2. पानी का केंद्रीकृत वितरण : यानी अलग-अलग जगहों पर जो कुएँ थे उनको बंद करके एक मुख्य जल स्रोत से पानी मुहैया कराना। यह भी पूरी तरह से सम्भव नहीं हो पाया।

3. उन तकनीकों का उपयोग जिससे पानी को साफ़ किया जा सके जैसे कि क्लोरीन का उपयोग और कृत्रिम छनाई करना।

जल विभाग का मानना था कि इन तीन तरीक़ों को अपनाने से एक बात तो यह समझ में आ जाएगी कि पानी का स्रोत कौन-सा उपयुक्त है और कौन सा नहीं; और दूसरा इस पहचान के बाद साफ़ पानी को अधिक से अधिक मात्रा में लोगों तक पहुँचाया जा सकेगा। लेकिन इसमें एक और बड़ी कमी रह गयी। पानी अपने उद्गम पर तो साफ़ हो जाता था, पर घरों तक पहुँचते-पहुँचते फिर से गंदा हो जाता था। इसका एक मुख्य कारण यह था कि जिस पाइप से पानी की आपूर्ति की जाती थी उसमें अक्सर गंदा पानी मिल जाता था। यह एक ऐसी समस्या है जो आज भी बनी हुई है। नतीजतन अक्सर बीमारियाँ फैल जाती थीं। इस पर अख़बारों में भी टीका-टिप्पणियाँ छपती थीं और समय-

20deepu:Layout 1 7/28/2017 5:15 PM Page 365

समय पर लोग ग़ुस्सा भी ज़ाहिर करते थे।

समस्या सिर्फ़ इतनी नहीं थी। उपयोग के बाद बचे हुए पानी का निकास भी आवश्यक था। चाहे ज़मीन पर किया जाए या किसी जलाशय में। उन्नीसवीं सदी के आख़िरी सालों में इस पर एक लम्बी बहस चली। ख़ास कर जब बनारस में यह योजना बनी कि शहर का मल भूमिगत पाइपों द्वारा पानी के उपयोग से सीधा गंगा में बहा दिया जाए। कुछ लोगों का कहना था कि चूँकि इंग्लैण्ड में ऐसा करना एक क़ानूनी अपराध है, इसलिए भारत में भी इसकी अनुमति नहीं मिलनी चाहिए। वहीं कुछ और लोगों का मानना था कि भारत की नदियाँ युरोप की नदियों से भिन्न थीं और यहाँ की धूप भी ज़्यादा तेज़ थी जिससे विनाशकारी कीटाणु ख़ुद ही मर जाते थे, इसलिए यहाँ पर ऐसा करना कोई विशेष दिक़्क़त पेश नहीं करेगा।

> जब दो सौ साल पहले छोड़ी गयी गैसें आसमान में अब भी मौजूद हैं और वैश्विक तपन की समस्या पैदा कर रही हैं, तब हम कब तक इस बात से राहत महसूस करते रहेंगे कि शायद हमारे शहर के बाहर कोई ऐसी जगह है जहाँ हम अपनी अनचाही चीज़ों को फेंक कर शहर के भीतर साफ़ हवा और पानी का आनंद उठा लेंगे।

1930 के आसपास यह भी सम्भव हो गया कि नदी में मैले पानी को निकालने या फिर उससे सिंचाई के लिए उपयोग करने से पहले उसका उपचार किया जाए। इसके तहत दिल्ली में ओखला में एक सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट भी बना। कमिश्नर ने ऐलान किया कि उपचार के बाद जो पानी निकलता है वह इंग्लैण्ड में साफ़ पानी के मानक पर पूरी तरह से खरा उतरता है। पर यह दावा कुछ ग़लत ही साबित हुआ। 1955–56 में दिल्ली में एक भयंकर बाढ़ आयी जिसके कारण बहुत बड़े पैमाने पर लोग पीलिया के शिकार हुए। इसके बाद जो जाँच हुई उसमें पता लगा कि रिहायशी और औद्योगिक इलाक़ों का जो गंदा पानी यमुना में जहाँ गिरता था वह पेयजल के लिए निकाले जाने वाले पानी के स्रोत के बहुत क़रीब था। बाढ़ आने पर दोनों का मिश्रण हो गया और चूँकि यही पानी अब पाइपों द्वारा शहर के विभिन्न इलाक़ों में पहुँचाया जाता था, इसलिए बीमारी बहुत व्यापक रूप से फैली। नतीजा यह निकला कि सौ साल से जो मुहिम छेड़ी गयी थी कि पाइप का पानी ही पीने योग्य है, वही पाइप का पानी अब विनाश का एक नया कारण बना।

तब से अब तक इस स्थिति में क्या बदलाव आया है? और क्या कुछ वैसा ही है जैसे पहले था? एक ओर तो इंजीनियरिंग और विज्ञान पर अभी तक विश्वास है— फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि पहले जहाँ सिर्फ़ यमुना से पानी लेकर शहर में मुहैया कराया जाता था वहाँ अब पाइप दूर-दूर तक उत्तराखण्ड के पहाड़ों तक से उतर रहे हैं।

एक दूसरा फ़र्क़ यह भी है कि जल विभाग द्वारा की गयी कृत्रिम छनाई में अब लोगों का उतना विश्वास नहीं रहा और व्यापक रूप से लोग अपने घरों में पाइप द्वारा पहुँचाए गये पानी को पुनः साफ़ करते हैं। पर सबसे ज़्यादा बदलाव नदी के प्रति लोगों की सोच में आया है। इसमें भी दोनों प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। एक तरफ़ तो जैसा प्लांट ओखला में बना था, वैसे अब कितने ही प्लांट दिल्ली में बन गये हैं। पर यमुना तो साफ़ नहीं हुई। इसलिए जो लोग इसके बारे में गहरी चिंता रखते हैं उनका मानना है कि हमें नदी के प्रति अपने रवैये को ही बदलना होगा और हर क़ीमत पर उसके प्रवाह को बनाए रखना होगा, उसके आस-पास की ज़मीन को बचाना होगा और कोशिश करनी पड़ेगी कि ऐसी कोई गतिविधि न हो जिससे वह नदी न होकर सदा के लिए नाली बनकर रह जाए। यानी सवाल सिर्फ़ पैसे और बड़े-बड़े प्रोजेक्ट्स का नहीं है बल्कि सोच को बदलने का भी है।

20deepu:Layout 1 7/28/2017 5:15 PM Page 366

ऊर्जा और पर्यावरण

दूसरा विषय जिस पर मैं संक्षिप्त टिप्पणी करना चाहता हूँ वह है ऊर्जा का। पानी के बनिस्बत इस विषय पर बहुत ही कम शोध हुआ है। इस बारे में मेरे विचार भी कुछ प्रारम्भिक क़िस्म के ही हैं। ऊर्जा के बारे में दो बातें समझने की हैं।

(1) दिन-प्रतिदिन ऊर्जा की खपत बढ़ रही है और इस पर जो ख़र्च होता है वह राष्ट्रीय चिंता का विषय है।

(2) ऊर्जा के प्रयोग से जहाँ तरह-तरह की सुविधाएँ मिलती हैं, वहीं पर्यावरण पर इसका गहरा असर होता है।

अब हमारे सामने चुनौती यह है कि हम कैसे दोनों विषयों पर एक साथ चिंतन करें। अंग्रेज़ी में एक सूत्र है : रिड्यूस, रिसाइकिल और रियूज़। इस फ़ार्मूले के दूसरे और तीसरे लफ़्ज़ पर तो हम ग़ौर करते हैं, पर पहला हमारी नज़र से कुछ ओझल-सा होता चला गया है। और इन तीन के साथ चौथा शब्द डिस्पोज़ल यानी निकास भी जोड़ दें तो यह दूरी और भी बढ़ जाती है। मेरे ख़याल से ज़रूरत है कि हम इन सब चीज़ों को एक साथ मिला कर देखें और यह तब सम्भव होगा जब हम उत्पादन और निर्माण की प्रक्रियाओं और पर्यावरण दोनों को एक साथ रखकर सोचेंगे। इस परिप्रेक्ष्य में मैंने जो थोड़ी बहुत जानकारी हासिल की है वह आपके साथ साझा कर रहा हूँ।

1905 में भारत सरकार ने एक विधेयक पारित किया जिसका नाम था बंगाल स्मोक नुइसेंस ऐक्ट यानी बंगाल धुआँ विघ्न / बाधा अधिनियम। इसे पारित करते वक़्त जो विचार-विमर्श हुआ, वह हमारे लिए बहुत ही दिलचस्प है। गृह विभाग का मानना था कि यह क़ानून इसलिए लाया गया है क्योंकि धुआँ एक बाधा है, न सिर्फ़ इसलिए कि उससे गंदगी फैलती है। रिज़्ले साहब जो उस वक़्त भारत सरकार के सचिव थे, उन्होंने इस मत का समर्थन किया। उन्होंने कहा : हालाँकि इसमें कोई गुंजाइश नहीं है कि धुआँ कम करने से कुछ ख़ास सफ़ाई होगी, लेकिन कलकता में धुएँ का ज़्यादा संबंध वाणिज्य से है और उन सवालों से जिनका वास्ता कारख़ानों के काम करने के तरीक़े से है— मसलन, किस प्रकार का कोयला इस्तेमाल में लाया जाए, किस तरह से भट्ठी में कोयले को झोंका जाए, किस तरह का बॉयलर हो इत्यादि। और इसलिए यह ज़रूरी है कि इस अधिनियम के अंतर्गत जो नियम बनें उनकी ज़िम्मेदारी वाणिज्य एवं उद्योग विभाग की हो। वह इस बात की भी ज़िम्मेदारी ले कि इन नियमों का ठीक से पालन हो।

ज़ाहिर है कि वाणिज्य विभाग को इस अतिरिक्त कार्यभार से बिल्कुल ख़ुशी नहीं हुई। उनका मानना था कि धुएँ की असुविधा लोगों के स्वास्थ्य और आराम से संबंध रखती है, जिसका उनके विभाग से बहुत मामूली-सा रिश्ता था। और इससे भी आगे जाएँ तो धुआँरहित वातावरण शहर के सौंदर्य से ताल्लुक़ रखता था और यह तो कोई भी नहीं कह सकता था कि वाणिज्य और सौंदर्य का आपस में कोई रिश्ता हो सकता है। कर्ज़न ने जो उस समय भारत के लाट साहब थे, भी कुछ ऐसे ही विचार रखे — भारत सरकार धुएँ के मामले में तभी हस्तक्षेप कर सकती है जब यह जनहित में हो। और चूँकि उद्योगों का ख़र्चा कम करना जनहित की बात नहीं हो सकती थी इसलिए इस क़ानून को पारित करने का एक ही ध्येय रह जाता था — कलकत्ता का सुंदरीकरण और उसमें बसे हुए लोगों का स्वास्थ्य।

इसके विपरीत इंग्लैण्ड में स्थिति कुछ और ही थी। चूँकि वहाँ पर धुएँ के विरोध में जो मुहिमें चलीं, वे सरकार के बजाय नागरिक समूहों द्वारा चलाई गयी थीं, इसलिए वहाँ स्वास्थ्य के साथ-साथ ख़र्च का भी मसला शुरू से ही अहम रहा। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा कि चूँकि कोयला एक सीमित सामग्री है, इसलिए इसका अगर सदुपयोग नहीं किया गया तो एक दिन यह ख़त्म हो जाएगा और फिर धीरे-धीरे इंग्लैण्ड का साम्राज्य ही ख़त्म हो जाएगा। इसी तरह अगर धुएँ के कारण लोगों

20deepu:Layout 1 7/28/2017 5:15 PM Page 367

का स्वास्थ्य ख़राब होता गया तो एक दिन ऐसा भी आएगा जब वो स्वस्थ नौजवान ही नहीं रह जाएँगे जो विश्व भर में इंग्लैण्ड के वर्चस्व को बनाए रख सकें।

नतीजतन, यह एक विडम्बना ही रही कि जो क़ानून भारत में 1905 में ही पारित हो गया वो इंग्लैण्ड में अगले कई दशकों तक नहीं बन पाया। कारण यह था कि वहाँ की सरकार स्थानीय उद्योगपतियों पर वह दबाव नहीं डाल सकती थी जो भारत में अंग्रेज़ी हुकूमत होने के कारण सम्भव था। 1914 में अंग्रेज़ी संसद में बोलते हुए लॉर्ड कर्ज़न ने गर्व से कहा कि देखिए जो काम करने में आपको इतनी कठिनाई हो रही है, वह काम हमने भारत में किस ख़ूबी से कर दिखाया। जो उद्योगपति यह समझते हैं कि ऐसा क़ानून बनने से उनके मुनाफ़े में कमी आएगी उन्हें यह भ्रामक विचार त्याग देना चाहिए क्योंकि हमने भारत में दिखा दिया है कि ऐसा कोई ख़तरा नहीं है। इस क़ानून का मक़सद सुंदरीकरण नहीं है बल्कि इसका सीधा संबंध तो व्यापार और आर्थिक मामलों से है। यानी कि भारत में स्वास्थ्य और सुंदरीकरण जनहित में; और इंग्लैण्ड में मुनाफ़ा और अधिक कमाई के हित में।

अंग्रेज़ी में एक सूत्र है : रिड्यूस, रिसाइकिल और रियूज़। इस फ़ार्मूले के दूसरे और तीसरे लफ़्ज़ पर तो हम ग़ौर करते हैं, पर पहला हमारी नज़र से कुछ ओझल सा होता चला गया है। और इन तीन के साथ चौथा शब्द डिस्पोज़ल यानी निकास भी जोड़ दें तो यह दूरी और भी बढ़ जाती है।

इंग्लैण्ड की संसद में कर्ज़न ने संतुष्टि के साथ यह भी बयान दिया कि भारत में उन्हें अपार सफलता मिली है। 1905 के अधिनियम के पारित होने के कुल तीन साल के अंदर ही उनका दावा था कि कलकत्ता में धुएँ की समस्या कोई अस्सी प्रतिशत घट गयी। अन्य प्रांत भी इतने प्रभावित हुए कि देखा-देखी मुम्बई ने भी ऐसा ही एक विधेयक पास कर दिया। लेकिन शायद कर्ज़न कुछ जल्दी बोल गये। उनके इस बयान के दो वर्ष पूर्व ही मुम्बई के नागरिक कुछ और ही कह रहे थे। 1912 में जमशेदजी टाटा ने पहला बड़ा जल विद्युत प्रोजेक्ट चालू किया— लोणावला में— जिसके उद्घाटन के मौक़े पर उन्होंने कुछ इस तरह के विचार व्यक्त किये : 'वित्तीय लाभ के बारे में काफ़ी कुछ कहा जा चुका है। लेकिन इसके साथ यह भी ज़रूरी है कि हम उन चीज़ों को चर्चा करें जो हमारे लिए ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हैं— हमारा स्वास्थ्य और सफ़ाई। मुम्बई वाक़ई कितना ख़ूबसूरत शहर होगा अगर हम उसको धुआँ-मुक्त कर सकें। मैं किसी से यह प्रार्थना नहीं कर रहा हूँ कि वह अपना पैसा ख़र्च करके इस समस्या का हल निकाले, लेकिन अगर उनके लिए सम्भव हो— और इसमें उनका पैसा भी बचेगा— तो पानी से उत्पन्न बिजली का प्रयोग करें बजाय कोयले के। और जब बड़े पैमाने पर ऐसा होगा तो बम्बई की गिनती विश्व के सबसे सुंदर शहरों में होने लगेगी।'

प्रांत के गवर्नर साहब ने हाँ में हाँ मिलाई और कहा— 'हम सब बम्बई से बहुत प्यार करते हैं पर हमें दुख है कि इसकी सुंदरता को इंसान बिगाड़ रहा है। ज्ञानोदय और धुआँ साथ-साथ नहीं चल सकते। इसलिए बिजली का अधिक से अधिक उपयोग किया जाए तो बेहतर होगा।' क़रीब दो दशक बाद भी हमें कुछ ऐसी ही बातें फिर से सुनाई देती हैं जब बम्बई में धुआँ कम करने के लिए बनाई गयी कमेटी अपनी रिपोर्ट में लिखती है : 'हमें नहीं मालूम कि कितना धुआँ घरों से आता है, और कितना फ़ैक्ट्रियों से। लेकिन यह कहना ग़लत नहीं होगा कि काफ़ी नुक़सान घरेलू गतिविधियों से होता है। इसलिए हमारी राय यह है कि लोगों को ज़्यादा से ज़्यादा बिजली व गैस का प्रयोग करना चाहिए जो अब काफ़ी मात्रा में उपलब्ध है।'

पर बिजली के उपयोग का मतलब सिर्फ़ धुआँ कम करना नहीं था। बल्कि धुआँ पैदा करने

20deepu:Layout 1 7/28/2017 5:15 PM Page 368

वाली गतिविधियों को एक जगह से उठा कर दूसरी जगह विस्थापित करना था। जैसा कि कलकत्ता के संबंध में अंग्रेज़ी विशेषज्ञ फ्रेड्रिक ग्रोवर ने लिखा : कि अगर हमें धुएँ की परेशानी से पूर्णत: बचना चाहते हैं तो हमें दो में से एक चीज़ करनी होगी— या तो बिजली का उत्पादन कोयले की खानों के पास ही किया जाए और वहाँ से उस शहर में लाया जाए या फिर गैस का उपयोग किया जाए। यानि कि बिजली शहर में उपलब्ध लेकिन उससे उत्पन्न परेशानियाँ कहीं और। अंतत: यह एक व्यापक तरीक़ा बना— जो चीज़ प्रदूषण पैदा करे उसे शहर से उठा कर कहीं और रख दिया जाए! इसके कुछ फ़ायदे ज़रूर हुए, लेकिन जैसा कि अब हम जानते हैं कि इस विचार और व्यवहार की अनेक सीमाएँ भी हैं— जब दो सौ साल पहले छोड़ी गयी गैसें आसमान में अब भी मौजूद हैं और वैश्विक तपन की समस्या पैदा कर रही हैं, तब हम कब तक इस बात से राहत महसूस करते रहेंगे कि शायद हमारे शहर के बाहर कोई ऐसी जगह है जहाँ हम अपनी अनचाही चीज़ों को फेंक कर शहर के भीतर साफ़ हवा और पानी का आनंद उठाते रहेंगे।